लेखकः मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

यगाना क़बीले के नायक

('इफ़्तिख़ार' आरिफ़ और उनकी शायरी)

यह लेख मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी ने अपने मित्र इफ़्तिख़ार आरिफ़ के कविता संग्रह "हर्फ़-ए-बारयाब" (सिद्ध वचन) के प्रकाशन के पश्चात किसी समारोह में पढ़ा था। इफ़्तिख़ार आरिफ़ पाकिस्तान के अग्रणी उर्दू शायर, बुद्धिजीवी और साहित्यकार हैं। उनका जन्म 21 मार्च 1944 को लखनऊ में हुआ था। उन्होंने उर्दू, अंग्रेज़ी और संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की, और 1965 में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। फिर न्यूयॉर्क विश्विद्यालय से पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद वे कराची चले गए। उन्होंने रेडियो पाकिस्तान और पी. टीवी में काम किया। उनका टीवी कार्यक्रम "कसौटी" बहुत लोकप्रिय हुआ था। कसौटी के बाद 1978 में वे बैंक ऑफ़ क्रेडिट एंड कॉमर्स इंटरनेशनल (बी.सी.सी.आई.) के सहयोग से चलने वाली संस्था "उर्दू मरकज़" से जुड़ गए और तेरह साल तक इंग्लैण्ड में रहकर उसके लिए काम किया। मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी भी लगभग इसी समय (1979-1990) बी.सी.सी.आई. के स्थाई सलाहकार के तौर पर लन्दन में रह रहे थे। वहाँ दोनों में काफ़ी घनिष्ठता रही। लन्दन से वापसी के बाद इफ़्तिख़ार आरिफ़ ने पाकिस्तान में विभिन्न उच्च पदों पर रहकर उर्दू भाषा व साहित्य की सेवा की। उन्हें पाकिस्तान के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कारों, हिलाल-ए-इम्तियाज़, सितारा-ए-इम्तियाज़ और प्राइड ऑफ़ परफ़ॉरमेंस से पुरस्कृत किया जा चुका है।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ को अपनी पीढ़ी के उर्दू कवियों में सबसे गंभीर कवि माना जाता है। उनकी रचना शैली रोमांटिक है जो एक प्रकार की सांस्कृतिक रूमानियत की नुमाइंदगी करती है। उनकी विषयवस्तु व रचनाशैली दोनों में एक परिपक्वता पाई जाती है जो उनके समकालीन कवियों में बहुत कम के यहाँ देखने को मिलती है। उनकी शायरी में गहरी सोच के साथ-साथ भावनाओं की शिद्दत और दुख के एक अंतर्प्रवाह का अहसास होता है। उनकी आवाज़ आधुनिक उर्दू कविता की एक जीवन्त व शक्तिशाली आवाज़ है। यह आवाज़ हमारे मन को सौन्दर्यबोध से संचारित करती प्रतीत होती है। इफ़्तिख़ार आरिफ़ का उर्दू ग़ज़ल को एक विशेष योगदान यह है कि उन्होंने कर्बला में हज़रत इमाम हुसैन की शहादत की घटनाओं से सम्बंधित शब्दावली, संकेतों, रूपकों, प्रतीकों व प्रतिबिम्बों को ग़ज़लों में अधिकता से इस्तेमाल करके, उनके द्वारा आधुनिक युग के मज़लूम व पीड़ित इंसान की त्रासदी को अपनी शायरी में सफलता के साथ पेश किया है। उनके यहाँ ऐसे शेरों की संख्या बहुत अधिक है जो कहावतों और लोकोक्तियों की भांति उद्धृत किये जा सकते हैं।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ के कुछ शेर यहाँ प्रस्तुत हैं:

1. *ख़्वाब की तरह बिखर जाने को जी चाहता है*
   ऐसी तन्हाई कि मर जाने को जी चाहता है
2. *घर की वहशत से लरज़ता हूँ मगर जाने क्यों*
   शाम होती है तो घर जाने को जी चाहता है

3. *मैं ज़िन्दगी की दुआ माँगने लगा हूँ बहुत*
   जो हो सके तो दुआओं को बेअसर कर दे
4. *कोई तो फूल खिलाए दुआ के लहजे में*

अजब तरह की घुटन है हवा के लहजे में
5. यह वक़्त किसकी रऊनत पे ख़ाक डाल गया
यह कौन बोल रहा था ख़ुदा के लहजे में
6. अब भी तौहीन-ए-इताअत नहीं होगी हमसे
दिल नहीं होगा तो बैअत नहीं होगी हमसे
7. रोज़ एक ताज़ा क़सीदा नई तश्बीब के साथ
रिज़्क़ बरहक़ है यह ख़िदमत नहीं होगी हमसे
8. हर नई नस्ल को एक ताज़ा मदीने की तलाश
साहिबो अब कोई हिजरत नहीं होगी हमसे
9. यही लहजा था कि मैआर-ए-सुख़न ठहरा था
अब इसी लहजा-ए-बेबाक से खौफ़ आता है
10. अजब तरह का है मौसम कि ख़ाक उड़ती है
वह दिन भी थे कि खिले थे गुलाब आँखों में
11. सुबह सवेरे रन पड़ना है और घमसान का रन
रातों-रात चला जाए जिस-जिस को जाना है
12. वही प्यास है, वही दश्त है, वही घराना है
मश्कीज़े से तीर का रिश्ता बहुत पुराना है
13. ख़ल्क़ ने एक मंज़र नहीं देखा बहुत दिनों से
नोक-ए-सिनाँ पे सर नहीं देखा बहुत दिनों से
14।. यही लौ थी कि उलझती रही हर रात के साथ
अबके ख़ुद अपनी हवाओं में बुझा चाहती है

यद्यपि इफ़्तिख़ार आरिफ़ से सम्बंधित उपर्युक्त जानकारी इस लेख को एक सन्दर्भ उपलब्ध कराती है, लेकिन मैं प्रिय पाठकों को आगाह करना चाहता हूँ कि लेख में अधिकतर निजी संबंधों और घटनाओं का वर्णन है, और वह भी बहुत सांकेतिक शैली में। इसलिए कई बातें अभी भी अस्पष्ट हैं। लेकिन मुझे आशा है कि पाठकगण मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी की विशिष्ट लेखन शैली का रसास्वादन कर सकेंगे। (अनुवादक)

(भाग 1)

(जुलाई 2001)

बी.सी.सी.आई. ने जिन साहित्यकारों और कवियों को भ्रष्ट, निंदित, लज्जित व समृद्ध किया, उनमें इफ़्तिख़ार आरिफ़ का तीसरा नम्बर है। दूसरे नम्बर पर मेरे प्रिय व परोपकारी मित्र जनाब अल्ताफ़ गौहर हैं, जो लन्दन में प्रवास के दौरान अपने भूतपूर्व स्वामी, फ़ील्ड मार्शल अय्यूब ख़ान के कारनामों को अंग्रेज़ी भाषा में क़लमबद्ध कर चुके हैं। वे जाने-माने उर्दू लेखक व कवि होने के अतिरिक्त बुद्धिमान और दूरदर्शी भी हैं। संभवतः पुस्तक उर्दू में इसलिए नहीं लिखी कि आशंका थी कि पढ़ने वाले समझ जाएँगे----और फिर समझ लेंगे। ऐसे नाज़ुक विषय पर हाथ क़लम करवाए बिना गद्य में कुछ कहना लेखक की चालाकी के अलावा

जल्लाद की नालायक़ी और दायित्वों में ढिलाई का दस्तावेज़ी सबूत है। अगर खुदा-न-ख़्वास्ता उनके हाथ क़लम हो जाते तो फिर हम जैसे पुराने श्रद्धालु और इफ़्तिख़ार आरिफ़ जैसे आधुनिक अनुयायी, चुम्बन-स्थल के विकल्प के रूप में गुरु के हाथ के बजाय चरण को चूमते। मगर वे ग़ुलाम इसहाक़ ख़ान के ख़िलाफ़ "मुस्लिम" में सहस्ताक्षर संपादकीय कैसे लिखते। वे हमारे योग्यतम और अकेले ब्यूरोक्रैट हैं, जिसको यह गर्व प्राप्त है कि उसने दो प्रेसिडेंट्स को, जो उसके बॉस रह चुके थे, ठिकाने लगाया। एक का विरोध करके और दूसरे का समर्थन करके। जो तलवार व कटारी से न मरा उसे KISS OF DEATH (प्राणघातक चुंबन) से सुला दिया।

अब इस लज्जित व समृद्ध मंडली का पहला नाम क्या बताएँ और कैसे बताएँ। मुँह पर आते-आते रह जाता है। विनम्रता "हैं! हैं!!" करती हुई मुँह पर हाथ रख देती है। इसके अतिरिक्त लोकप्रियता और जनता-जनार्दन की ईर्ष्या की भी आशंका है। यूँ भी अब आत्मश्लाघा की परंपरा केवल राजनीतिक भाषणों तक सीमित है। जिसे कलंक कहते हैं मित्रो, इसी कलमुँहे का नाम है।

अगर आप इस समय लिहाज़-मुरौवत में मौन भी रहे, तो बाहर निकलते ही, मुझसे नहीं तो इफ़्तिख़ार आरिफ़ से ज़रूर पूछेंगे कि इन बातों का "हर्फ़-ए-बारयाब" (सिद्ध वचन) से क्या सम्बन्ध? इस विशेष सम्बन्ध का स्पस्टीकरण ज़रा आगे चलकर करूँगा। पहले समृद्धि की उस फलदार डाली की एक झलक दिखाने को जी चाहता है, जिससे हमें बा-जमात (ससमूह) फल चुराने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। बी.सी.सी.आई. के दो सीनियर अधिकारियों का देहांत हुआ तो बैंक के कर्ताधर्ता जनाब आग़ा हसन आबिदी ने उनकी विधवाओं के नाम एक-एक मिलियन डॉलर के मकान हस्तांतरित करने की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त एक-एक मिलियन डॉलर नक़द अदा किये। यानी दोनों मदें मिलाकर दोनों को छह-छह करोड़ रूपये और एक-एक मर्सीडीज़ कार मिली। इसका असर यह हुआ कि सुहागनें इन विधवाओं को ईर्ष्या की दृष्टि से और अपने जीवित पतियों को क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं।

ऐ कलमुंहे तुझसे तो यह भी न हो सका

मुझे अच्छी तरह याद है कि उन दिनों हम दोनों यानी इफ़्तिख़ार आरिफ़ और यह तुच्छ लज्जित-लज्जित से फिरते थे कि मरना अगर यही है तो जीना फ़िज़ूल है। बी.सी.सी.आई. के दरो-दीवार पुकार-पुकारकर जान पर खेलने का निमंत्रण देते रहे।

ऐ मर्द-ए-नातवाँ तुझे क्या इंतज़ार है?

('ग़ालिब' के मिसरे में "मर्ग-ए-नागहाँ" [अकस्मात् मृत्यु] को "मर्द-ए-नातवाँ" [कमज़ोर मर्द] कर दिया है)

साहिबो, सामयिक और लाभकारी मृत्यु हर ऐरे-ग़ैरे नत्थू खैरे के नसीब में नहीं होती। यह भूमिका हमने मनोरंजन हेतु नहीं बाँधी। बी.सी.सी.आई. ने देश से बाहर जो आजीविका व अपमान का साधन उपलब्ध कराया, उसकी सुविधाओं और पर्याप्त फ़ुरसतों की कृपा से हमें तीन किताबों की सौग़ात मिली----- इफ़्तिख़ार आरिफ़ की "महर-ए-दोनीम" (दो टुकड़े सूरज/स्नेह), अल्ताफ़ गौहर की "अय्यूब ख़ान। "

और तीसरी किताब एक बार फिर इफ़्तिख़ार आरिफ़ की "हर्फ़-ए-बारयाब" (सिद्ध वचन) है, जिसका अधिकतर हिस्सा लन्दन के निशदिन के गुप्त व घोषित उद्धरणों से भरा हुआ है। मैं इस संग्रह के एक ऐसे रोचक पक्ष की ओर आपका ध्यान आकर्षित कराना चाहूँगा जिसकी ओर संभवतः अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया।

स्पष्ट है उनकी कविता उनकी आपबीती है और क्यों न हो। लेकिन कम लोगों को मालूम होगा कि उनके प्रकट रूप से इश्क़िया (श्रृंगारिक) शेरों में प्रयुक्त अक्षरों के अंक-मूल्यों से भी बी.सी.सी.आई. के जन्म, अपमान व मृत्यु की तिथियाँ निकलती हैं। उनकी और इस आजिज़ (तुच्छ) की आपबीती में इसकी "पापबीती" की ओर संकेत मिलते हैं। इफ़्तिख़ार आरिफ़ तेरह वर्ष से बी.सी.सी.आई. से संबद्ध, संलग्न व पेंशनभोगी रहे। इसकी दास्तान स्वादिष्ट भी है और शिक्षाप्रद भी। इसमें कुछ यशस्वियों के नाम भी आते हैं, मगर हम उसका उल्लेख किसी अनुचित अवसर के लिए उठा रखते हैं। हम एक वाक्य के गागर में इस कड़वे सागर को यूँ भरेंगे कि बैंक के संचालकों ने पब्लिक डिपाज़िट को मुनाफ़ा समझा और मुनाफ़े को अपना माहाना मुआवज़ा समझकर खा गए।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ को एक लिहाज़ से बी.सी.सी.आई. और उसके संपन्न स्वामियों व प्रतिष्ठित गज़नवियों का 'फ़िरदौसी' कहा जा सकता है। कविता यदि हमारे प्रताप व प्रकोप की अभिव्यक्ति का माध्यम होती, तो हम भी अपने लिए इसी उपाधि का सुझाव देते। अंतर इतना है कि परंपरा के अनुसार 'फ़िरदौसी' ने प्रतिशोध की भावना से महमूद ग़ज़नवी पर हज्व (उपहासपूर्ण कविता) उस समय लिखी जब उसे वादे के अनुसार "शाहनामा" लिखने के इनाम में अशर्फ़ियाँ नहीं मिलीं। लेकिन इफ़्तिख़ार आरिफ़ और हम 'फ़िरदौसी' से अधिक चालाक निकले, कि हमने शाह और उसके चाटुकारों, सहचरों, और दरबारी मदारियों की प्रशस्ति लिखे बिना पूरी अशर्फ़ियाँ प्रतिमाह वसूल कीं और हज्व (उपहासपूर्ण कविता) भी लिखी। अशर्फ़ियाँ हमारा पारिश्रमिक था। वह परिश्रम जो नवीनतम हज्व कहने में प्रतिमाह व प्रतिवर्ष करना पड़ता है। यह भी कहा जाता है कि जब महमूद ग़ज़नवी के गुमाश्ते (प्रतिनिधि) 'फ़िरदौसी' के घर अशर्फ़ियों से भरे थैले लेकर पहुँचे तो उसकी अर्थी उठ रही थी। लेकिन वर्तमान केस में अर्थी स्वयं प्रशंसा-पात्र की उठी। इस सम्बन्ध में हम चुने हुए शेर आगे चलकर सुनाएँगे।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ और उनकी कविता पर मैं तीसरी बार लेख पढ़ रहा हूँ। प्रकट रूप से अब केवल एक की और गुंजाइश रह गई है। पुराने दोस्तों के बारे में हर बार ओरिजिनल और सच्ची बात कहना सिर्फ़ इस स्थिति में संभव है कि उनसे दुश्मनी हो जाए। मैंने 1983 में उर्दू केंद्र लन्दन और फिर 1992 में कराची जिमख़ाने में इफ़्तिख़ार आरिफ़ के बारे में जो कुछ पढ़ा, उसे उनके दोस्तों ने प्रशंसात्मक और दुश्मनों ने हास्यास्पद समझा और दोनों प्रसन्नचित्त घर लौटे। खुद इफ़्तिख़ार आरिफ़ यह देखकर खुश हुए कि बिच्छू अपने प्यारों को प्यार भी अपने डंक ही से करता है।

इस बार भी समय के अभाव और अपने अविवेकपूर्ण आलस्य के कारण मैं जहाँ-तहाँ से उन्ही लेखों के गद्यांश, नवीन संशोधनों और नवीन संकलनों के साथ प्रस्तुत करूँगा जिन्हें आप इस प्रकार सुनिए जिस प्रकार पुरानी घिसी-पिटी फ़िल्म के प्रेमी उसका तथाकथित नया प्रिंट देखते हैं, जिसमें यह तक नज़र नहीं आता कि स्क्रीन पर जो दो छायाएँ नज़र आ रही हैं, उनमें से हीरोइन कौन है और हीरो कौन-----कल्पना-चक्षु पर आकांक्षा की ऐनक लगाकर उनको अर्थात अपने ही अतीत को देखते हैं। 'जैसे दो साए तमन्ना के सराबों में मिलें।' (सराब--मृगमरीचिका)

साहित्यिक चोरी का निकृष्टतम और सबसे फूहड़ रूप अपने ही वाक्यों की पुनरावृत्ति और अपनी ही रचना की चोरी है, जो सिर्फ़ इस स्थिति में सही है कि लेखक को ईश्वर की कृपा और उपस्थित-जनों की स्मृति-

क्षीणता पर पूर्ण विश्वास हो। सो इसी अपराध-स्वीकरण व आशा के साथ नई प्रस्तुति में पुरानी रचना के पैवंद जगह-जगह लगाए हैं। यह न लेख है, न ज्ञानपूर्ण भाषण, बल्कि सादा पानी का वह गिलास है जो रेस्टोरेंट में अच्छी चाय से पहले मुफ़्त मिलता है। आप औपचारिक रूप से चंद घूँट लेलें तो मैं खुद ही इसे उठाकर अलग रख दूँगा। फिर आध्यात्मिक मदिरापान का दौर चलेगा।

जब किसी व्यक्ति के दुश्मनों की संख्या में अचानक व अकारण अत्यधिक वृद्धि हो जाए तो जानना चाहिए कि उसने जीवन में उल्लेखनीय और घनिष्ठ मित्रों के लिए असहनीय प्रगति की है। यानी उसकी अपनी कामना से कम, मगर ईर्ष्यालुओं की सहनशक्ति से अधिक। जब यह गंतव्य आ जाए, तो प्रगति की गति को विरोधियों की ईर्ष्या के तापमान की तीव्रता से नापा जा सकता है। सो इफ़्तिख़ार आरिफ़ इस मित्र-आज़माऊ चरण से घायल परन्तु सिर उठाये हुए गुज़रे हैं। उनका अंदाज़ विजयपूर्ण कम, श्रद्धापूर्ण अधिक है। यह उनकी विनम्रता की माँग, मंसब की मजबूरी और स्वभाव का डिसिप्लिन है। वे मुशायरों में जमकर पढ़ते हैं और किसी को जमने नहीं देते। इतने कम अरसे में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने के बावजूद कोई कवि अपने प्रतिद्वंदियों का हीरो नहीं बन सकता। वे खुद कहते हैं कि उन्हें लोकप्रियता तो बहुत प्राप्त हुई मगर उसके नतीजे में मिला क्या?

इक ख़िलअत-ए-दुश्नाम व कुलाह-ए-सुख़न-ए- बद
(गाली का एक लिबास व अपशब्द की एक टोपी)

दोष उनका सिर्फ़ इतना है कि अच्छी कविता लिखते हैं और इस तरह पढ़ते हैं कि समझ में न आये तो दुगना मज़ा देती है। माननीय 'ज़फ़र' इक़बाल साहब ने, जो कविता, कीर्ति व गाली के मर्म से परिचित हैं, एक मुँह बोलती रदीफ़ में क्या शेर निकाला है :

गुमनाम जो भी रहता है, इज़्ज़त उसकी है
मशहूर होएगा तो बहुत ख़्वार होएगा

शेर अनुपम है। परन्तु 'ज़फ़र' इक़बाल को गुमनामी का निजी अनुभव नहीं। हम जो कि पाकिस्तान के गुमनामों के समूह के एक सदस्य हैं, अपने अनुभव के आधार पर अर्ज़ करेंगे कि बेइज़्ज़ती तो गुमनामी में भी होती है, मगर इस प्रकार जैसे एक रोज़ेदार दूसरे रोज़ेदार को गाली दे।

उन्हें जो प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि व प्रशंसा बाल सफ़ेद होने से पहले मिली, वह उर्दू कवियों को आम तौर पर मरने के बाद नसीब होती है। तहसीन सरवरी, खुदा की उनपर कृपा हो, एक नामवर साहित्यकार गुज़रे हैं । अंतिम दिनों में दरिद्रता ने घर में डेरे डाल दिए थे। कुछ इसका कारण परिस्थितियाँ थीं और कुछ, बल्कि बहुत कुछ वे खुद----मित्रों ने मशवरा दिया कि राइटर्स-गिल्ड से संपर्क करो। तहसीन सरवरी ने अपनी अर्ज़ी में लिखा कि राइटर्स-गिल्ड मेरी मृत्यु के बाद, दस्तूर व नियम के अनुसार मेरी विधवा को एक हज़ार रूपये माहवार वज़ीफ़ा देगी। मेरी विनती है कि मुझे इसका आधा यानी पाँच सौ ज़िन्दगी में ही दे दिए जाएँ ताकि मैं मरने से, और गिल्ड दुगने बोझ से बच जाए।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ को भी ब्रतानवी सरकार ने वृद्धावस्था से पूर्व, पेंशन का हक़दार स्वीकार कर लिया था।

वे बड़े रख-रखाव के आदमी हैं। जो लोग किसी लिहाज़ से भी आदरणीय नज़र नहीं आते, उन्हें भी----- बल्कि अदबदा के उन्हीं को आदर देते हैं। जिस व्यक्ति से इफ़्तिख़ार आरिफ़ असाधारण आदर व विनम्रता से पेश आएँ तो इसका अर्थ यह है कि उसे वे अलौकिक हद तक अयोग्य समझते हैं। पहले पैर छुआ करते थे, अब घुटने को हाथ लगाते हैं। ख़ुदा वह दिन जल्द लाए जब उनकी गर्दन पकड़ सकें। कहते हैं:

मिट्टी, पानी, आग, हवा, सब उसके रफ़ीक़
जिसको उसूल-ए-फ़र्क़-ए-मरातिब आता है

(रफ़ीक़-- दोस्त; उसूल-ए-फ़र्क़-ए-मरातिब-- ओहदे या पद या मंसब के अंतर का उसूल या पहचान)

चार तत्व तो उनके प्रतिद्वंदी हो गए, मगर उन सबके घपले का योगफल ---मनुष्य--- न कभी किसी का हुआ न होगा। हर एक से तपाक और गर्मजोशी से मिलने का नतीजा यह निकला कि जिनके दिलों में ख़ुद खोट है, उनको यार के प्यार में भी P.R. नज़र आता है। स्वयं को सांसारिक रूप से चतुर व चौकस साबित करने का एक ढंग यह भी है कि दूसरों के स्नेह व प्रेम को ढोंग का नाम दिया जाए।

कोई सादा ही उसको सदा कहे
हमें तो लगे है वह ऐय्यार सा

इफ़्तिख़ार आरिफ़ के स्वाद व स्वभाव का थोड़ा बहुत अनुमान उनकी पसंद व नापसंद की अकाट्यता व विविधता से होता है। आइये पहले उनकी चिढ़ पर दृष्टि डालें। ठस आदमी, काव्य-अरसिक बॉस, बैंकर्ज़, हर प्रकार की दाल व सब्ज़ी, सही साइज़ की क़मीज़, जिस्म की हर वह जुंबिश और हरकत जिस पर वर्ज़िश का संदेह हो, छोटा छंद, और पक्की उम्र वाले लोगों की संगत से परहेज़ करते हैं।

अब तनिक उनकी मनपसंद चीज़ें देखें: पहले नम्बर पर सीख़ कबाब, दूसरे नम्बर पर शामी कबाब, तीसरे नम्बर पर बिहारी कबाब, फिर किसी भी प्रकार का कबाब जो उपलब्ध हो। उसके बाद बिरयानी, जिसमें चावल नाममात्र हों, तेज़ मिर्चें और गरम मसाला, और उसी विशेषता वाला नवीनतम स्कैंडल। हर प्रकार का मीठा जिसमें शक्कर के साथ किसी और चीज़ का मिश्रण न हो।

न छूटे मुझसे लन्दन में भी आदाब-ए-शकरखोरी

('आदाब-ए-शकरखोरी' [शकर खाने का नियम], इक़बाल के मिसरे [पंक्ति] के 'आदाब-ए-सहरख़ेज़ी' [सुबह उठने का नियम] से बदल दिया है।)

मिर्ज़ा कहते हैं कि यूरोपियन "मीठे" मधुमेह के मरीज़ों ने ईजाद किये थे। काला रंग भी पसंद है बशर्तेकि ग़लत जगह न लगा हुआ हो। मतलब यह कि चेहरे पर न हो। पुस्तक से प्रेम है। चुनांचे वे चेहरे भी पसंद हैं जो उससे मिलते-जलते हों। यानी किताबी (लम्बोतरे) हों:

कि देखें जिनको यूरोप में तो दिल होता है सीपारा

(सीपारा-- तीस टुकड़े, क़ुरान के तीस अध्याय)

इसके विपरीत मिर्ज़ा को किताबी चेहरे से चिढ़ है। मगर इंटेलेक्चुअल महिलाओं को सम्मान व स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, बशर्तेकि वह किसी और से विवाहित हो। तीन "ख़"ओं को देखकर उनकी आँखों में ख़ून उतर आता है। TRIPLE "ख़" से तात्पर्य हैः ख़ूबसूरत ख़वातीन के ख़ाविंद (पति)। स्पष्ट रहे कि यह बात मैंने मिर्ज़ा के बारे में कही है और केवल यह दिखाने के लिए कि चिढ़ का कोई तर्कसंगत कारण नहीं हुआ करता। इफ़्तिख़ार आरिफ़ को रात गए तक गप, बंद गले का सफ़ेद कोट, लाल मोज़े, किशोरावस्था की घायल भावनाओं से मैच करती हुई टाई, यानी लहूलुहान लाल, पीली-पीली सी सिल्क की क़मीज़ भाती है, और सच तो यह है कि ख़ूब फब्ती है।

पीले रंग पर याद आया कि एक दिन हमारे मित्र प्रोफ़ेसर क़ाज़ी अब्दुल क़ुद्दूस ने अपनी सौन्दर्यशास्त्रीय प्राथमिकताओं की घोषणा करते हुए फ़रमाया कि उन्हें बसंती रंग, गदराया हुआ सुडौलपन, चिकनी त्वचा, और गुदगुदे CONTOURS बहुत पसंद हैं। इस पर मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बोले कि ये पाँचों गुण "पूर्णतया" कराची के पपीते में पाए जाते हैं।

कैसी कविता अच्छी होती है और कौन-सी बुरी, इसका स्पष्टीकरण, मौलाना 'हाली' की तरह, कुछ कवि अपनी प्रस्तावना में कर देते हैं और कुछ अपनी ही कविताओं से यह अंतर मन में बिठा देते हैं। इफ़्तिख़ार आरिफ़ ने न कमज़ोर और ढीली कविता रची, न हमारी तरह अपनी प्रस्तावना स्वयं लिखी, क्योंकि दूसरे प्रशंसा करने में कृपणता से काम लेते हैं। उनके पहले कविता-संग्रह "महर-ए-दोनीम" (दो टुकड़े सूरज/स्नेह) का आरम्भ असाधारण प्रस्तावनाओं से होता है। पहली प्रस्तावना में 'फ़ैज़' ने उनकी अनन्यता, ध्वनि व छंद, शब्द-चयन व मुहावरे में नवीनता, अत्याचार व हिंसा, दमन व मुँहबंदी पर विरोध और आजीविका की बेड़ियों में जकड़े बंदियों की पराधीनता, निर्धनता व अपयश पर बहुत बहुग्राही संक्षिप्तता के साथ टिप्पणी की है। इस संक्षिप्त परन्तु सुन्दर प्रस्तावना के होते हुए, दूसरी प्रस्तावना के रूप में, मेरे मित्र माननीय प्रोफ़ेसर गोपीचंद नारंग के ज्ञानपूर्ण व भारी-भरकम लेख की बिल्कुल आवश्यकता न थी। इसलिए कुछ साहित्यिक मंडलियों में इसपर सुगबुगाहटें भी हुईं। जिसकी वजह यह भी हो सकती है कि इन मंडलियों को दोनों विख्यात बुज़ुर्गों की एकमत प्रशंसा ने बेमज़ा किया। लेकिन आपत्तिकर्ता यह भूल जाते हैं कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ अपने सतर्क व्यवहार व रख-रखाव को कभी हाथ से जाने नहीं देते। लखनऊ में यह दस्तूर था कि बहू-बेटियाँ, ख़ास तौर पर नई-नवेली दुल्हनें, डोली में बैठकर कहीं जातीं तो रास्ते में कहारों को कन्धा नहीं बदलने देती थीं, और रवाना होने से पहले डोली में एक पत्थर रखवा देती थीं ताकि कहारों को असल वज़न का अनुमान न हो सके। कुछ कमज़ोर दिल वाले केवल वज़न पर ही आसक्त हो जाया करते थे। सो मेरे मित्र माननीय प्रोफ़ेसर गोपीचंद नारंग की प्रस्तावना वह भारी पत्थर है जो चूम-चूमकर छोड़ने के बजाय साथ रखने के योग्य है कि हमारी आपकी बुरी नज़र से बचाता है।

यह डोली में पत्थर वाली बात जब लन्दन से सीना और हसीना-ब-हसीना दिल्ली पहुँची तो डॉक्टर गोपीचंद नारंग ने बहुत बुरा माना। हालाँकि, ख़ुदा गवाह है, हमारा प्रयोजन सिर्फ़ यह स्पष्ट करना था कि ऐसी कविता किसी सर्टिफ़िकेट की मोहताज नहीं। प्रिय इफ़्तिख़ार ने मुँह से तो कुछ न कहा कि वे हमारे प्रेम, निष्कपट नीयत और फूहड़पन पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। मगर इस घटना के बाद हमने देखा कि हम कोई रचना पढ़ रहे हैं तो ऐसी गूंगी ताली बजाने लगे जिसमें दोनों हाथ तो मिलते हैं, ध्वनि बिल्कुल नहीं निकलती।

आज सुबह हमने भ्राता मुश्फ़िक़ ख़्वाजा से अपनी उलझन और दोनों प्रिय मित्रों की नाराज़गी का ज़िक्र सुझाव लेने के लिए किया तो फ़रमाया कि उनसे कह दीजिये कि मैं अब डोली से यह पत्थर उस वक़्त तक नहीं निकाल सकता जब तक तुम किसी दूसरे पर्दानशीन की डोली का पता उपलब्ध न करा दो जिसमें यह पत्थर रख सकूँ।

लन्दन के उस सुन्दर और यादगार समारोह में मैंने स्वीकार किया था कि मैंने कभी कविता नहीं लिखी, और चूँकि मेरे काम गद्य से अच्छे ख़ासे निकल जाते हैं, इसलिए भविष्य में कविता लिखने की कोई आशंका भी नहीं। मैं आलोचक भी नहीं कि अच्छी और बुरी कविता में अंतर कर सकूँ। न मेरा स्वास्थ्य इसकी अनुमति देता है कि मैं किसी भी बुरे कवि को उसके सही मुक़ाम से आगाह कर सकूँ। संभवतः क्या, निश्चित रूप से, इन्हीं कमियों के आधार पर आपने मुझे विचार व्यक्त करने के लिए आमंत्रित किया है। मैंने उस दिन यह भी निवेदन किया था कि दरअसल मुझ जैसे गद्य लेखक का 'फ़ैज़' साहब के सामने कविता के गुणों पर गुफ़्तगू करना ऐसा ही है जैसे कोई बकरी कछार में जाकर शेर को VEGETARIANISM के लाभों व गुणों पर लेक्चर दे। मेरा विचार है कि इसके लिए इफ़्तिख़ार आरिफ़ से संपर्क करना चाहिए कि वे अच्छी कविता लिखने के अतिरिक्त कविता और कवि के पारखी भी हैं। वे दोषपूर्ण कविता, गुनगुनी मित्रता, सही साइज़ की क़मीज़ और ठंडा कबाब बर्दाश्त नहीं कर सकते। बुरी कविता, गद्य-कविता, व नीरस गद्य लिखने वालों के बारे में एक ज़माने में इफ़्तिख़ार आरिफ़ की अवधारणा थी कि उनकी नमाज़-ए-जनाज़ा हराम है। यह भी पुरानी संस्कृति की शालीनता और मौजूदा कल्चर की मजबूरी है कि वे दुष्ट को, जिसने जनता-जनार्दन का जीवन नरक कर दिया है, कभी रोकते थे, न टोकते थे। उसके शव-स्नान और कफ़न से ढंके जाने के बाद जब उसका शव सामने रखा जाता और लोग हर प्रकार से आश्वस्त हो लेते कि अब यह उठकर अपमानित नहीं कर सकता, तो पहली बार उसके बारे में सच बोलते थे, और नमाज़-ए-जनाज़ा हराम होने का फ़तवा देते थे। पहले हम मौत से नहीं डरते थे। मगर अब हमें केवल इफ़्तिख़ार आरिफ़ के फ़तवे के कारण मौत से डर लगने लगा है। इसलिए कि पश्तो मुहावरे के मुताबिक़ हम अपना मुर्दा ख़राब नहीं करवाना चाहते।

उस ज़माने में अयोग्य कवि के लिए इफ़्तिख़ार आरिफ़ ने एक पारिभाषिक शब्द बना रखा था "बकरी कवि।" कविता से विमुखता का कारण तो हमारी समझ में भी आता है, लेकिन बकरी में हमें पहली नज़र में इसके अतिरिक्त कोई दोष नज़र नहीं आता कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ उसके कबाब बड़े शौक़ से खाते हैं। दाद (प्रशंसा) इफ़्तिख़ार आरिफ़ ख़राब शेर की भी देते हैं, कि यह उनकी शालीनता व श्रवण-सभ्याचार का तक़ाज़ा है। मगर इतने अंतर के साथ कि अच्छे शेर पर सीने पर हाथ रखकर सुबहान अल्लाह! सुबहान अल्लाह! कहते हैं। बुरा शेर सुनते समय उनके मुँह से कुछ विचित्र सी ध्वनियाँ निकलती हैं जो दाद से मिलती-जुलती ज़रूर हैं लेकिन डिक्शनरी में नहीं मिलतीं। लगातार ख़राब शेर सुनने पड़ें तो वे सर पीटने के बजाय दाहिने हाथ से बार-बार अपनी जाँघें पीटते हैं। अगर कविता बहुत ही ख़राब हो तो उठकर अपने ख़ास अंदाज़ में कवि के घुटने पकड़ लेते हैं, जिसका प्रकट रूप से यही कारण मालूम होता है कि कहीं वह कविता सुनाकर भाग न जाए, और ये उसे अपनी नई ग़ज़ल भी न सुना सकें।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ एक चुटकला एक मेधावी व मुँहफट कवि के हवाले से सुनाते हैं। उसने एक कवि से, जो पचास वर्ष से बड़ी लगन व दृढ़चित्त से कविता लिख रहे थे, पुछा, "क्या आपकी कभी यह इच्छा नहीं होती कि मैं भी अच्छी कविता लिख सकता?"

(भाग 2)

(जुलाई 2001)

इफ़्तिख़ार आरिफ़ लन्दन में कोई चौदह साल मुशायरे लूटते रहे। अमरीका, कैनेडा और यूरोप में भी बराबर धावा बोलते रहे। लन्दन में हमने उनके स्वागत व लोकप्रियता के वैभव को ईर्ष्या व आश्चर्य की दृष्टि से देखा कि जब उनकी बेगम और परिवार के लोग लन्दन में नहीं होते थे तो प्रतिदिन उनके फ़्लैट के दरवाज़े पर कोई फ़ैन टिफ़िन-कैरियर या प्लास्टिक-कन्टेनर में ताज़ा खाना रख जाता था। कभी एक से अधिक घर से आया हुआ डिब्बा भी देखा गया। यह अदृश्य सिलसिला महीनों जारी रहा। यह तो हमने सुन रखा था कि हज़रत मूसा के अनुयाइयों की शिकायत पर आसमान से मन व सलवा (दैवीय भोजन) उतरा था। और यह भी सुना था कि अल्लाह शकर-खोरे (चीनी खाने वाले को) शकर देता है। लेकिन यहाँ तो शकर, शकर-दानी सहित उतर रही थी। एक बार हम भी अकेलेपन और भोजन के अभाव का शिकार हुए तो एक भरा हुआ टिफ़िन-कैरियर, लाल रिबन और सेंटेड (सुगन्धित) पर्ची समेत, जो उनकी चौखट पर रखा था, चुपके से उठा लाए कि भूख और मित्रता में भोजन-अधिग्रहण जायज़ है। क्या अर्ज़ करूँ, हर ख़ाने (कोष्टक) में एक स्वादिष्ट डिश, और हर डिश से खाने की ख़ुशबू के अलावा प्रेम की लपटें बहुत अधिक आयीं। कविता की दाद (प्रशंसा), नरगिसी कोफ़्ते और शाही टुकड़े से मिलती हमने इससे पहले नहीं देखी थी। हम लिखने के मामले में बहुत आलसी और मंदगति हैं। बारह साल बाद हमारी एक किताब आई है। लेकिन हमारे गद्य की प्रशंसा में कोई हमें उरद की दाल भी प्रदान करदे, तो हम हर दिन लिखने को तैयार हैं। हमारा तात्पर्य आभार-पत्र लिखने से है। इस पर याद आया कि दाल न सिर्फ़ यह कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ कभी नहीं खाते, घर में पकने भी नहीं देते कि बघार की बू से कविता का अवतरण अवरुद्ध हो जाता है। सब्ज़ी को सिर्फ़ हमारा और चौपायों का अधिकार समझकर छोड़ देते हैं।

उन्होंने अपनी एक प्रसिद्ध कविता में स्वयं को बारहवाँ खिलाड़ी कहा है जो इस प्रतीक्षा में बैठा गेंदें गिनता रहता है कि कोई खिलाड़ी घायल हो तो उसके बदले उसे भी खेलने का चांस मिले। यह भी उनकी विनम्रता है। हमें तो वे किसी तरफ़ से बारहवें खिलाड़ी नज़र नहीं आते। हर लिहाज़ से जावेद मियाँ दाद हैं।

एक और सन्दर्भ में "हर्फ़-ए-बारयाब" (सिद्ध वचन) के प्रतिद्वंदियों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

मेरे शुभचिंतको! कभी एक नज़र मेरा सिलसिला भी तो देखिये। हम उन्हें उनकी पसंद के छंदीय व काव्यात्मक संबंध बनाने से मना नहीं करते, लेकिन हमारा विचार है कि अच्छे कवि का सिलसिला स्वयं उसी से आरम्भ होकर उसी पर समाप्त हो जाता है। इफ़्तिख़ार आरिफ़ अपने विशिष्ट व अनुपम डिक्शन एवं स्वर के आधार पर इसी दुर्लभ समूह से संबंध रखते हैं। यह बात उनके लिए गर्व का कारण होनी चाहिए कि वे बेउस्तादे

या निगुरे हैं, और साहित्यिक स्तर पर किसी का अनुकरण नहीं करते। ग़ालिब एक पत्र में प्रेषिती से क्षमायाचना करते हुए उसकी कविता में सुधार न करने का बड़ा सुन्दर औचित्य बताते हैं। कहना यह चाहते हैं कि मैं बहुत बूढ़ा व कमज़ोर हो गया हूँ। हाथों में ही नहीं आँखों में भी दम नहीं रहा। तुम भी सुधार के मोहताज नहीं रहे। लिखते हैं:

"शेर अपने बच्चे को एक मुद्दत तक शिकार के तरीक़े सिखाता है। जब वह जवान हो जाता है तो वह खुद शेर की मदद के बिना शिकार किया करता है।"

इसी रूपक को जारी रखते हुए निवेदन करता हूँ कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ जवान होने से पहले ही शिकार खेलने लगे थे, और शिकार भी बिना शेर की सहायता के। शेर की सहायता के बिना इस लिए कि खुद शेरों का शिकार करने लगे थे। अतः अब उन्ही की खाल पर बैठकर काव्य-चिंतन, खुदा की इबादत और सुंदरियों का उल्लेख करते हैं।

रहा इस समूह की आबरू रहने और रखने का सवाल, तो इसमें संदेह नहीं कि इफ़्तिख़ार अपने आध्यात्मिक सिलसिले और अनुपम ग़ज़ल शैली की आबरू हैं। और इस आबरू को बचाने के लिए ही वे एक हाथ से अपनी पगड़ी थामे रहते हैं और दूसरे से दुश्मन का घुटना सहलाते हैं। अगर तीसरा हाथ होता तो उससे भी ज़रूर कुछ काम लेते।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ अपनी कला के शिष्टाचार और अपने शिल्प के डिसिप्लिन से बखूबी परिचित हैं। वे बेक़ाबू आह को सहज प्रस्फुटन, और अभ्यास व रियाज़ को कृत्रिम व असहज नहीं समझते। भावनात्मक स्तर पर भी उन्होंने कुछ लक्ष्य प्राप्त किये हैं और कुछ युद्ध जीते हैं। क्विज़ कार्यक्रम "कसौटी" वाला जवान जो अपने सामान्य ज्ञान और पुस्तकीय ज्ञान की मार से बड़े-बड़ों को चित कर देता था और बीस सवालों में व्यक्तित्व का तियापांचा करके रख देता था, अब सयाना होकर स्वयं बड़े-बड़े सवाल उठाने लगा है। वह इकहरे बदन वाला साँवला-सलोना जवान जो अपनी माथे पर बड़ी मेहनत से बिखेरे हुए बालों को बार-बार गर्दन के झटके से प्रकट रूपसे दुरुस्त परन्तु, वास्तव में , और अधिक बिखेरता चला जाता था, वह हमें इस लिए और भी याद है क्योंकि हमारे सर पर उस ज़माने में भी फ़ालतू बिखेरने के लिए तो बहुत बाद की बात है, कंघा तक करने के लिए बाल नहीं थे। अब उस जवान के बाल ज़िंदगी की धूप में सफ़ेद हो चुके हैं।

मैंने कहीं और निवेदन किया है कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ के पहले कविता-संग्रह "महर-ए-दोनीम (दो टुकड़े सूरज/स्नेह) और "हर्फ़-ए-बारयाब" (सिद्ध वचन) के बीच दस वर्ष, एक महाद्वीप, हज़ारों मील की दूरी , चंद चाँद-चेहरे एक "ख़्वाब-ए-नीमरोज़" (दिवास्वप्न) और स्वयं इफ़्तिख़ार आरिफ़ बाधा बने हुए थे। यहाँ तक पहुँचने में उन्हें दुनिया की सबसे लंबी यात्रा करनी पड़ी। अर्थात अपने अस्तित्व के वृत्त से निकलकर जीवन को

देखने, समझने, परखने और जो कुछ देखा है, वह दूसरों को दिखाने का सतत प्रयास। और यही कलात्मक अभिव्यक्ति व संप्रेषण का वास्तविक उद्देश्य है। इस यात्रा ने उनके स्वर को एक नई चमक और ऊर्जा प्रदान की है। वे अपनी बात जमकर कहते हैं, पूरे विश्वास के साथ कहते हैं, और सुन्दर ढंग से कहते हैं। कहीं-कहीं क्रोध और दु:ख से आवाज़ भर आती है, मगर उसकी गूँज और गमक नहीं जाती। विनम्रता भी व्यक्त करते हैं तो अपनी टोपी को तिरछी ही रहने देते हैं। स्वभावतः उनकी साहित्यिक कड़ियाँ 'यगाना'[1] से मिलती हैं। वे आत्म-सम्मान और गौरव व गरिमा के कवि हैं। उनकी आवाज़ ललकारपूर्ण और स्वर विरोधपूर्ण है। उनके यहाँ केवल अक्षर-योजन और डिक्शन का शिकवा ही नहीं, स्वर का औदात्य और एक शिष्ट क्रोध व दहाड़ भी है। उनका स्वर उनके शब्दों का आधार और सम्पूर्ण ठाठ है। जब शब्द अपनी छलबल दिखलाकर अपना जाना-पहचाना अर्थ व्यक्त करने के बाद हाथ-बाँधे चुपचाप नतमस्तक खड़े हो जाते हैं, तब स्वर बोलने लगता है। फिर उसके उतार-चढ़ाव, गूँज-गरज, और मद्धिम ठाठ और गंध से अर्थों और संकेतों के नए सोते और नई ध्यान-धाराएँ फूट निकलती हैं। फिर कवि अपने अर्थों की बहार दिखाता है। शेर देखें:

जो हवा के रुख़ पे खुले हुए हैं, वो बादबाँ तो नज़र में हैं
वो जो मौज-ए खूँ से उलझ रहा है, वह हौसला भी तो देखते

(वो बादबान [पाल] जो हवा की दिशा में खुले हैं वो तो हमारी नज़र में हैं। लेकिन वह जो खून की मौजों से उलझ रहा है, वह हौसला तुमको देखना चाहिए था।)

यह गुलू-गिरफ़्ता व बस्ता-ए-रसन-ए-जफ़ा, मेरे हम-क़लम
कभी जाबिरों के दिलों में खौफ़-ए-मुकालमा भी तो देखते

(ये मौन [गुलू-गिरफ़्ता] और अत्याचार की रस्सी से बंधे [बस्ता-ए- रसन-ए-जफ़ा] लोग, जो मेरी तरह लिखारी हैं, काश ये कभी अत्याचारियों [जाबिर] के दिलों में संवाद [मुकाल्मा] का भय देख पाते।)

साहिबो! यह इफ़्तिख़ार आरिफ़ का ही हुनर और हौसला है कि इतनी इज़ाफ़तें (फ़ारसी शब्द-विधान) लगाने के बावजूद बीस-बीस हज़ार श्रोताओं वाले मुशायरे लूट लेते हैं। "महर-ए-दोनीम" वाला नास्टैल्जिया जो उन्हें हर तीसरी ग़ज़ल और नज़्म में रह-रहकर सताता था, अब एक साल से दूसरे साल, एक गली से दूसरी गली, एक चेहरे से दूसरे चेहरे, एक यार से दूसरे यार, और एक याद से दूसरी याद में कम होता जा रहा है, और बड़ी तेज़ी से वर्तमान के दर्द और मौजूदा आनंद को स्थान दे रहा है। प्रियतमा से दूरी व वियोग के मीठे-मीठे दर्द और अभाव या वंचित रह जाने की भावना व आत्म-दया की जगह अब वे खुलकर बीती रातों की मस्ती और प्रियतमा से मिलन के आनंद की बात करते हैं।

वह बदन कि बोसा-ए- आतिशीं में जला भी फिर भी हरा रहा
वह बदन कि लम्स की बारिशों में धुला भी फिर भी नया रहा
वह बदन कि वस्ल के फ़ासले पे रहा भी फिर भी मेरा रहा

(बोसा-ए-आतिशीं--गर्म चुम्बन; लम्स--स्पर्श; वस्ल– प्रेम-मिलन)

हमारे यहाँ शरीर की कोई पवित्रता नहीं। शरीर के तुमुल तक़ाज़ों को अकाव्यात्मक, निकृष्ट, तुच्छ और पाप समझा जाता रहा है। प्रेम-मिलन के विचार से स्वंय प्रियतमा को उतनी लज्जा नहीं आती जितनी की प्रेमी महोदय को। इसके कई कारण हो सकते हैं। मसलन खुदा और बीवी का खौफ़, वृद्धावस्था और व्यभिचार-शक्ति के क्षीण होने के कारण शराफ़त। यह विचारणीय बात है कि उर्दू भाषा में बुज़ुर्गों की मौत और प्रेम-मिलन के लिए एक ही शब्द प्रयोग होता है। विसाल! इफ़्तिख़ार आरिफ़ आज से सत्तरह वर्ष पहले जब लन्दन में दाख़िल हुए तो उनकी डायरी में ऐसे मचलते-बिलकते शेर भी थे:

तुझसे बिछड़कर ज़िन्दा हैं
जान, बहुत शर्मिंदा हैं

यह Adolscent शेर समझदार मर्दों और नासमझ महिलाओं में बहुत "हिट" देगा। रही शर्मिंदा होने की बात, तो लन्दन की एक यात्रा इस शर्मिंदगी को दूर कर देती है। हम जैसे सरल-स्वभाव लेखकों और इफ़्तिख़ार जैसे कवियों के आश्चर्य-जगत का अनुमान लगाइए जब वे पहले-पहल ऐसा दृश्य देखते हैं जो अज़ायम (दुस्साहस) के बजाय:

जराइम को सीने में बेदार करदे
निगाह-ए-मुसलमाँ को तलवार करदे

(जराइम--अपराध; बेदार करना-- जगाना, या उभारना; निगाह- नज़र, दृष्टि)

दो यात्रा और एक यात्रा-वृत्तान्त के बाद तो दिल पिघलकर ऐसा नर्म हो जाता है कि फिर कोई यह नहीं कह सकता कि

मेमों को शिकायत है कम-आमेज़ है मोमिन

(कम-आमेज़- एकांतप्रिय, कम घुलने-मिलने वाला; मोमिन- ईमान वाला मुसलमान)

लेकिन देखिये, यही शायर पंद्रह वर्ष बाद कैसे नाज़ुक चरण से किस कलात्मक आत्म-सयंम के साथ गुज़र जाता है।

मेरा खुश-ख़राम बला का तेज़ ख़राम था
मेरी ज़िन्दगी से चला गया तो ख़बर हुई

(खुश-ख़राम-- मस्त या सुन्दर चाल वाला, माशूक़; तेज़ ख़राम – तेज़ चलने वाला)

यह शेर सिर्फ़ वही कह सकता है जो इस अनुभव से गुज़रा हो और इसकी दाद भी वही दे सकता है जिसके दिल का नगर लुट चुका हो।

इनके यहाँ राजनीतिक तथ्यों व दुर्घटनाओं पर भी गहरा, व्यापक और उदास कर देने वाला कमेंट मिलता हैः

वही है ख़्वाब जिसे मिलके सबने देखा था
अब अपने-अपने क़बीलों में बंट के देखते हैं

इसपर मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग का कमेंट भी सुन लीजिए। कहते हैं, देश के निर्माण व विकास के काम के लिए बड़ा परिश्रम और बुद्धिमत्ता चाहिए। देश बनाना और इसे शक्तिशाली करना तो बहुत बड़ी बात है , हमारे कुछ राजनेता तो इतने नालायक़ हैं कि देश तोड़ भी नहीं सकते, जिसकी वे वर्षों से बराबर कोशिश कर रहे हैं।

इफ़्तिख़ार आरिफ़ की चर्चा हमारे अनुपम व छैल-छबीले यार और अलबेले शायर साक़ी फ़ारूक़ी को बीच में लाए बिना पूरी नहीं होती। उन दोनों के बीच झगड़े की गणना उर्दू साहित्य के ऐतिहासिक झगड़ों मसलन 'इंशा' और 'मुसहफ़ी', 'न्याज़मन्दान-ए-लाहौर' और 'देहलवी ग्रुप', 'जोश' मलीहाबादी और शाहिद अहमद देहलवी में होनी चाहिए। अंतर केवल इतना है कि यह झगड़ा एक-तरफ़ा था। इफ़्तिख़ार आरिफ़ कविता में तो विरोधपूर्ण व ललकारपूर्ण स्वर अपना लेते हैं, लेकिन उनका स्वभाव लड़ाका नहीं है। जबकि साक़ी फ़ारूक़ी अपने आपसे भी लड़ते रहते हैं। खुद को कई बार मुंहतोड़ शिकस्त दे चुके हैं। परिचय के तौर पर बस इतना बता देना पर्याप्त होगा कि साक़ी उर्दू के एक अत्यंत सुन्दर, बेहद ओरिजिनल और संभवतः सर्वाधिक प्रचंड व प्रतापी शायर हैं। संभवतः की क़ैद इसलिए लगानी पड़ी कि हमने किसी और प्रचंड शायर से मात और मार नहीं खाई। पचीस-तीस वर्ष से लन्दन में हैं और दोस्तों से युद्धरत हैं। जिसको दोस्त रखते हैं, उसको फिर कहीं का नहीं रखते। बल्कि वह फर उनके योग्य भी नहीं रहता। आधुनिक पाश्चात्य कविता और साहित्यिक रुझानों का जो स्पष्ट ज्ञान साक़ी रखते हैं वह किसी और के हिस्से में नहीं आया। शुद्ध और नवीनतम पाश्चात्य Contemporary Diction के यदि वे एकमात्र कवि नहीं तो सबसे विशिष्ट कवि अवश्य हैं।

साक़ी अपनी ऑस्ट्रियन बेगम को प्यार में गुंडी औए Rottweiler कुत्ते को कामरेड के नाम से पुकारते हैं। कुत्ता तो अपने नाम और साक़ी के प्यार की ताब न लाकर जान से हाथ धो बैठा। मेढक, कुत्ते, बिल्ली, ख़रगोश, मकड़े, बिल्ले आदि पर बहुत सुन्दर और विचारोत्तेजक कवितायें लिखी हैं। चार टाँगों से कम किसी जानदार से साक़ी प्यार नहीं कर सकते। जबसे उन्होंने घोषणा की है कि वे हमसे प्यार करते हैं, हम रातों को उठ-उठकर अपनी टाँगें टटोल-टटोलकर गिनते हैं कि कहीं हम अपने बारे में किसी भ्रान्ति में तो नहीं रहे हैं। जिस दिन से उनकी कृपादृष्टि हम पर हुई है, उन्होंने भूमि पर क़दम रखना छोड़ दिया है। मतलब यह कि उनका हर पग हमारे पांडित्य की पगड़ी पर पड़ता है। नकचढ़े ऐसे कि बोर आदमी, क्लीशे, ख़राब शेर, और नेकचलन औरत को एक मिनट भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। जिन मित्रों को बहुत अधिक प्रिय रखते हैं, उनको पत्रों में संबोधनों के बजाय गालियाँ लिखते हैं। उनके प्रेषिती-गण इन सड़ी गालियों के इतने आदी हो गए हैं कि साक़ी यदि सभ्य स्वर में बात करें तो दोनों ही अजनबियत महसूस करते हैं। इसलिए एक दफ़ा मेरे प्रिय असद मोहम्मद खां साहब ने साक़ी के नाम अपने पत्र में बड़े दुःख भरे स्वर में शिकायत की कि सूअर! तुमने पिछले पत्र में मुझे गालियाँ क्यों नहीं लिखीं! इसका कारण हमें तो यही मालूम होता है कि उस ज़माने में साक़ी सूअर पर एक कविता लिख रहे थे जो प्रकाशित हो चुकी है। अब ज़रा शेर देखिये और शायर के तेवर देखियेः

सफ़र में रख, मुझे मेरी जुदाइयों से परख
फ़िराक़ दे मुझे ख़ाक-ए-विसाल में न मिला

(जिदाई- विरह; फ़िराक़- विरह; ख़ाक-ए-विसाल- प्रेम-मिलन की धूल)

मुझमें सात समुन्दर शोर मचाते हैं
एक ख़याल ने दहशत मचा रखी है

जो व्यक्ति ऐसा शेर कह सकता है उस पर सात ख़ून माफ़ हैं। इससे हमारा तात्पर्य सात ख़ुदकुशियाँ हैं कि इस तेजस्वी और प्रचंड शायर के हाथ अपने ही जीते-जीते ख़ून में रंगे हुए हैं।

छह-सात वर्ष पहले तक गले में छोटे-बड़े, रंगबिरंगे मोतियों और मनकों की माला पहनकर साक़ी घनगरज के साथ कविता पढ़ते तो लोग कविता से चकाचौंध होकर मोती गिनने लगते।

सुन्दर कविता पाठ में जब प्रचंड स्वर और उत्तम क्वालिटी की स्कॉच व्हिस्की की मिलावट हो जाए तो शेर सह-आतिशा (तीन गुना नशीला) हो जाता है। पढ़त ऐसी विस्मयकारी कि एक-एक शब्द को ज़िन्दा करके सामने ला खड़ा करते हैं। ख़रगोश, कीड़े, या मेंढक पर कविता पढ़ते हैं तो बिल्कुल वही बनने की बड़ी कामयाब कोशिश करते हैं। ऐसी नाटकीय शैली आविष्कार की है कि जिसमें अपने शरीर के सारे अंग प्रयोग करके सुनने वाले की पाँचों इन्द्रियों पर छा जाते हैं। जैसे डूब के शेर कहते हैं, उसी प्रकार डूबकर पढ़ते हैं। और कभी-कभी इतनी गहराई अर्थात कवि-डुबाऊ गहराई में उतर जाते हैं कि ख़ुद तो निकल आते हैं लेकिन हम जैसे प्रशंसकों को वे यह कहकर वहीं छोड़ आते हैं कि प्रिय भ्राता, जहाँ भी रहो ख़ुश रहो!

तो यह हैं हमारे अलबेले, छैलछबीले मित्र साक़ी फ़ारूक़ी जिनका इफ़्तिख़ार आरिफ़ से शीतयुद्ध कोई दस वर्ष से चला आता है। एक दिन बैठे-बिठाए न जाने क्या मन में आई कि अपने मित्र यानी इफ़्तिख़ार आरिफ़ को एक 36 पृष्ठों का पत्र लिख मारा, जिसमें कथित रूप से उनकी मानवीय दुर्बलताएँ एक-एक करके गिनवाईं, और इस आरोप-पत्र की डेढ़-दो सौ कॉपियाँ इंगलिस्तान, पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में मित्रों को भेज दीं। यदि 36 पृष्ठों के पत्र में आप प्रति पृष्ठ एक दोष मान लें तो हम जैसा अनुभवी बैंकर भी उँगलियों पर हिसाब लगाके बता सकता है कि कितने दोष हुए।

पत्र इतना प्रभावकारी था कि जिसने भी पढ़ा, यह जाना कि यह दोष तो मुझमें भी है। कुछ ने इफ़्तिख़ार आरिफ़ को ईर्ष्या व जलन की दृष्टि से देखा कि अमुक पाप हमसे क्यों न हुआ। सारी स्वादिष्ट बातें मेरे प्रिय मित्र ही के हिस्से में क्यों आ गईं। इफ़्तिख़ार आरिफ़ ने उत्तर में अपने प्रतिद्वंदी पर हमला नहीं किया। न आरोपों का खंडन किया। न कोई बयान अपनी सफ़ाई में दिया। वे अब भी साक़ी फ़ारूक़ी से मिलते और उन्हें साक़ी भाई कहते हैं। अलबत्ता फब्तियों का आदान-प्रदान हम जैसे स्नेही व साझा मित्रों के माध्यम से होता रहता है। कभी युद्धविराम भी हो जाता है, तो यार लोग अपनी ओर से फब्तियाँ गढ़ के दबी हुई चिंगारियों को फिर से हवा दे देते हैं। इस घटना का वर्णन हमने थोड़ा विस्तृत परिचय व पृष्ठभूमि के साथ इसलिए किया है क्योंकि इससे इफ़्तिख़ार आरिफ़ के स्वभाव, व्यवहार और रख-रखाव पर प्रकाश पड़ता है।

उनके कुछ शेरों का अवतरण आपबीती का पता देता है। प्रेम-प्रसंगों से संबंधित शेरों की व्याख्या वे स्वयं करें, क्योंकि अपने हृदयपटल पर घटित घटनाओं में वे बुज़ुर्गों के शामिल होने को अच्छी नज़र से नहीं देखते। फ़िलहाल बी.सी.सी.आई.---- जो कारण है जगहंसाई का---- से सरोकार है। इफ़्तिख़ार आरिफ़ के निजी

संबंध बैंक के अधिकारियों से हमेशा निष्कपट व बिरादराना रहे। लेकिन उनके दंभपूर्ण अंदाज़, और संस्था में ठकुरसुहाती बातों और चाटुकारितापूर्ण वातावरण से वे हमेशा खिन्न रहे और शिकायत करते दिखे। लंदन के आरंभिक दौर का एक शेर है जो इफ़्तिख़ार सलमा ने बड़े साहस से उनकी मौजूदगी में भी सुनाया जिनके बारे में कहा थाः

रोज़ एक ताज़ क़सीदा नई तश्बीब के साथ
रिज़्क़ बरहक़ है यह ख़िदमत नहीं होगी हमसे

(क़सीदा–प्रशस्ति, स्तुति; तश्बीब--प्रस्तावना; रिज़्क़–आजीविका; बरहक़–खुदा की ओर से निर्धारित)

फिर धीरे-धीरे वे इस वातावरण को स्वीकार करना सीख लेते हैं। दुखी दिखते हैं, मगर चुप नहीं बैठते। लेकिन अब शिकायत अपने आप से हैः

हूँ लुक़मा-ए-तर खा गई लहजे का जलाल
अब किसी हर्फ़ को हुर्मत नहीं मिलने वाली

(लुक़मा-ए-तर-- स्वादिष्ट निवाला; लहजा -स्वर ; जलाल–प्रताप; हर्फ़–शब्द, अक्षर; हुर्मत--सम्मान)

अब उन्हें यह मलाल हैः

आसूदा रहने की ख़्वाहिश मार गई वर्ना
आगे, और बहुत आगे तक जा सकता था मैं

(आसूदा–संतुष्ट)

उनके अहंकार को इस नियुक्ति से बहुत ज़बरदस्त आघात लगाः

बेच आये सर-ए- क़रिया-ए-ज़र जौहर-ए-पिन्दार
जो दाम मिले ऐसे मुनासिब भी नहीं थे

(सर-ए- क़रिया-ए-ज़र--दौलत के गाँव में; जौहर-ए-पिन्दार–अहंकार या गर्व का मूलतत्व)

अलबत्ता दूसरी पंक्ति से हम सहमत नहीं। सच की घोषणा आवश्यक है। बी.सी.सी.आई. ने सबको, जिनमें यह तुच्छ भी शामिल है, दाम जो मुनासिब थे, उससे भी अधिक दिए। और फ़ॉरेन-एक्सचेंज में दिए। बी.सी.सी.आई. ने अपने पुराने नमक खाने वालों के अहंकार का अंतिम संस्कार हमेशा उन्ही की बहुत बड़ी मर्सीडीज़ में किया और स्वाग्वासियों को उनकी गोरी सेक्रेटरियों ने अश्रुरहित आँखों से क़ब्र में उतारा। अजीब आज़ाद मर्द थे। खुदा शायद उनको क्षमा करदे, पाकिस्तान और पाकिस्तानी कभी क्षमा नहीं करेंगे।

लन्दन के तीसरे और अंतिम दौर में रोटी नमक और सुरक्षा-दीवार प्रदान करने का वादा समाप्त हो जाता है। खोखली स्वर्ण-दीवार अपने संरक्षण में बैठे शरणार्थियों पर गिरती है क्योंकि उसे एक-न-एक दिन गिरना था। लेकिन वे मर्सिया (शोकगीत) नहीं कहते। तिरस्कारपूर्वक तथ्य बयान करते हैंः

क़ीमत–ए--ख़िलअत-ए-ज़र बर-सर-ए-बाज़ार गिरी
जिसके हर पेच में नख़वत थी वह दस्तार गिरी

(सोने की ख़िलअत [ख़िलअत-ए-ज़र] अथवा स्वर्ण के बने पुरस्कार-वस्त्र की क़ीमत बाज़ार में [सर-ए-बाज़ार] गिर गई; जिस पगड़ी [दस्तार] के हर पेच में दंभ [नख़वत] था वह पगड़ी गिर गई)

कोई दो वर्ष पूर्व जब हम बी.सी.सी.आई. से विदा हुए तो उन्होंने यह शेर पहले-पहल सुनाया थाः

एक दरवेश-ए-खुश इक़बाल के जाने की थी देर
फिर तो वह धूप का बोझ आया कि दीवार गिरी

(दरवेश-ए-खुशइक़बाल – मांगलिक दरवेश)

फिर तो यह हालत हुई कि बी.सी.सी.आई. से जो भी पापी निकाला गया, उसने यही समझा कि यह दरवेश वही है।

और भी बहुत से शेर जो मैं इसलिए नहीं पढ़ूंगा कि इफ़्तिख़ार आरिफ़ की आवाज़ और लहजा कहाँ से लाऊं?

उनका स्वभाव क्लासिकी और डिक्शन आधुनिक है। कर्बला की त्रासदी और उससे संबंधित इमेजरी को उन्होंने बड़ी कलात्मकता, तेजस्विता और नवीनता के साथ प्रयोग किया है। स्वभावतः वे एक धार्मिक आदमी हैं। यही परम्परा और उससे संबद्ध काव्यात्मक संकेत और बिम्बविधान उनके शेरों की बुनत में प्रयुक्त स्वर्ण तारों में बार-बार उभरते हैं। वे जब उमरे[2] पर जाने लगे तो हमने उनको दो नसीहतें की थीं जिनपर उन्होंने अमल भी किया। अव्वल यह कि जिस दोस्त या परिचित का नाम उमरे की दुआओं और आवश्यक कर्तव्यों के दौरान इत्तिफ़ाक़ से भी याद आ जाए, उसके कल्याण के लिया दुआ ज़रूर करना। उन्होंने पक्का वादा किया। उनका बयान है कि ख़ान-ए-काबा के मुल्तज़िम[3] में रो-रोकर दुआ माँग रहे थे कि अचानक दो ऐसे शायरों के नाम याद आ गए जिनसे उनके संबंध इतने तनावपूर्ण थे कि एक दूसरे का मिसरा उठाना[4] छोड़ दिया था। इफ़्तिख़ार यह भी फ़ैसला नहीं कर सकते थे कि इन सज्जनों की शायरी ज़्यादा ख़राब है या किरदार। इत्तिफ़ाक़ से वे दोनों शायर उन दिनों बीमार थे। जैसे ही उनके नाम दिमाग़ में आये, काँप उठे। थोड़ा झिझके, फिर दुआ माँगी कि ऐ अल्लाह तू उनकी सेहत तो बेहतर करदे, मगर शायरी को वैसी ही रहने दे।

दूसरी नसीहत हमने यह की थी कि मेरे प्यारे! जब उमरे पर जाओ कम-से-कम एक गुनाह से तौबा करो और तौबा पर सख़्ती से अमल करो। एक गुनाह से तौबा करके पहले उमरे से बहुत खुश-खुश लौटे, लेकिन दूसरे उमरे के बाद कुछ बुझे-बुझे। उदास, लज्जित और हमसे रूठे से लगे। अल्लाह जाने गुनाह पहले ख़त्म हुए या फ़ॉरेन एक्सचेंज। तीसरी बार उमरे पर नहीं गए। कहते हैं अभी मेरी उम्र ही क्या है।

शिगूफ़ा (हैदराबाद);
जून 2001; जिल्द 34; अंक 6 (मुस्ताक अहमद यूसुफ़ी विशेषांक) & जुलाई 2001; जिल्द 34; अंक 7

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
वरिष्ठ व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क

---

[1] यास 'यगाना' चंगेज़ी (1884-1956): असल नाम मिर्ज़ा वाजिद हुसैन था। उर्दू के महान व प्रसिद्ध शायर थे। पहले 'यास' उपनाम था बाद में 'यगाना' हो गया। जन्म अज़ीमाबाद (पटना) में हुआ था, लेकिन अपनी ससुराल लखनऊ में आकर बस गए थे। वे लीक से हटकर चलने वाले शायर थे। उनकी शायरी अत्यंत ओजस्वी, प्राणवान, आत्मसम्मान, व आत्मविश्वास से परिपूर्ण और बाग़ी तेवर की शायरी है। उनका स्वर अक्सर तीखा और व्यंग्यात्मक है। उन्होंने लखनऊ के बड़े-बड़े शायरों के बीच अपनी शायरी का लोहा मनवाया। लेकिन बाद में 'ग़ालिब' की गुस्ताखीपूर्ण आलोचना के कारण बहुत बदनाम हुए और उनका देहांत अत्यंत दरिद्रता व दुर्दशा की हालत में हुआ। (अनु.)

[2] उमरा-- हज से अलग दिनों में मक्का और मदीना की यात्रा करना और औपचारिक हज के कर्तव्यों को पूरा करना, ख़ास तौर पर काबा की परिक्रमा । यह एक प्रकार का छोटा हज होता है। (अनु.)

[3] काबा के दरवाज़े और हजर-ए-अस्वद (काले पत्थर) के बीच की एक जगह जहाँ परिक्रमा के बाद दुआ की जाती है । इस जगह हज़रत मोहम्मद साहब ने लेटकर दुआ माँगी थी। (अनु.)

[4] मिसरा उठाना-- जब कोई शायर शेर सुनाता है तो दूसरे शायर उसकी पंक्ति को दोहराते हैं। इसे मिसरा उठाना कहते हैं. इस का अर्थ है कि मिसरा उठाने वाला शायर या श्रोता शायर को ध्यान से सुन रहे हैं। (अनु.)